संवाद

लीजिए फिर आ गया नया साल! नए साल में हम नए-नए संकल्प लेते हैं, एक-दूसरे को शुभकामनाएँ देते हैं, स्नेह स्वरूप उपहार देते हैं। हम भी उपहार स्वरूप आपके लिए लेकर आए हैं- कहानी कला के विविध पहलुओं से संबंधित लेखों को अपने में समेटे यह अंक। कहानी की दुनिया में विचरने और रमने में बच्चों को अनूठा ही आनंद मिलता है। कहानी मन को स्पर्श करती है। एक-दूसरे को आपस में जोड़ती है। कहानी कहना-सुनना हमारी परंपरा का एक अंग रहा है। परिवार के बड़े-बुजुर्गों से कहानी सुनते-सुनते बच्चे न जाने कब उनसे अटूट स्नेह की डोर से बंध जाते थे। विद्यालय में भी शिक्षक से कहानी सुनते-सुनते बच्चे विषयों के साथ अच्छी आदतें और मूल्य भी आत्मसात् कर लेते थे। कहानी बच्चों को जीवन मूल्य भी सिखाती है। लेकिन विगत कुछ वर्षों में उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति ने कहानी सुनने-सुनाने की इस परंपरा को न जाने कब निगल लिया कि हमें पता ही नहीं चला। सामाजिक ढाँचे में बदलाव के साथ ही परिवारों का स्वरूप भी बदल गया और कहानी न जाने कहाँ खो गई? अब न तो परिवारों में दादी-नानी हैं और न ही कहानी। कहानी को पुनः बच्चों के घर और विद्यालयी दुनिया से जोड़ने के लिए विशेष प्रयासों की ज़रूरत है।

यह भी कहा जाता है कि दादी-नानी की वो परंपरागत कहानियाँ अब प्रासंगिक नहीं रहीं। यही हम शायद यह भूल जाते हैं कि धरोहर कभी भी अप्रसांगिक नहीं हो सकती। धरोहर का न तो कभी महत्त्व कम होता है और न ही उससे जुड़ाव को नकारा जा सकता है। कहानी के साथ भी ऐसा ही है। कहानी में आनंद है, ज्ञान है, संस्कृति है, दर्शन है, इतिहास है और इन सबसे ऊपर कहानी माध्यम है सीखने का। तो क्यों न हम शिक्षक कहानी को बच्चों के घर और विद्यालयी दुनिया से जोड़ने का प्रयास करें। प्रयास में ही सफलता छिपी है। असफलता की आशंका ही और लोगों द्वारा खड़े किए गए मापदंड प्रयास के मार्ग में बाधक बन जाते हैं। हमें इन मापदंडों से ऊपर उठकर कर्मठ बनना है। हमें बदलाव को केवल

आत्मसात् नहीं करना है बल्कि उसका हिस्सा बनना है। हमें बनना है उस वृक्ष की तरह जिससे सूखी पत्तियों का गिरना लाज़मी है तभी तो नई कोंपलें फूटेंगी और शीतल बयार बहेगी। शिक्षा जगत में इसी ताज़ी बयार की ज़रूरत है क्योंकि इसी में प्रगति है और यही है हमारा अस्तित्व। क्यों न हम खुद को ऐसा बनाएँ कि प्रगति के मापदंड स्वयं बदलने को बाध्य हो जाएँ। कवि दुष्यंत के शब्दों में–

मेरी प्रगति या अगति का
यह मापदंड बदलो तुम,
जुए के पत्ते सा
मैं अभी अनिश्चित हूँ।
मुझ पर हर ओर से चोटें पड़ रही हैं,
कोपलें उग रही हैं,
पत्तियाँ झड़ रही हैं।

अकादमिक संपादक